International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 17-02-2025, Accepted: 18-03-2025, Published: 02-04-2025
Volume 11, Issue 2, 2025, Page No. 3-4

भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय चिन्तन

डॉ. धर्मेंद्र कुमार शर्मा
हिन्दी विभाग, भाषा अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

सारांश
आदिमानव से लेकर सभ्य एवं सुसंस्कृत मानवीय संवेदनायुक्त मनुष्य तक की मानवीय यात्रा का ऐतिहासिक विहंगावलोकन करने पर यह भली–भाँति दृष्टिगत होता है कि भारतीय संस्कृति का पर्यावरणीय चिन्तन अतुलनीय है। संसार में मानव एक चिन्तनशील प्राणी है और उसने अपनी चेतना द्वारा संस्कृति का निर्माण किया, इसलिए संस्कृति का जन्म मनुष्य के मध्य ही होता है। यदि वास्तव में प्राचीन भारतीय संस्कृति परम्परा पर दृष्टिगत करें तो हम देखते हैं कि इसका पर्यावरण के प्रति प्रेम इतना प्रबल है कि सांस्कृतिक विकास की दिशा भी पर्यावरण के माध्यम से ही तय होती है। ऋषियों ने प्रकृति के साथ तारतम्य स्थापित कर जीवन की नवीन परिपाटी का विकास किया तथा ऐसी सभ्यता का निर्माण किया जो प्रकृति से पूरी तरह घुल–मिल गई। इसी विशेषता ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को अरण्यक संस्कृति या तपोवनी संस्कृति की अज्ञा से अलंकृत किया है। इस शोध–पत्र में आदिमानव सभ्यता से लेकर वर्तमान की सभ्य एवं सुसंस्कृत मानवीय संवेदनायुक्त मनुष्य तक की मानवीय यात्रा का वर्णन एवं विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्दः भारतीय संस्कृति, पर्यावरणीय चिन्तन, पौराणिक साहित्य, औद्योगीकरण

संसार में मानव एक चिन्तनशील प्राणी है और उसने अपनी चेतना द्वारा संस्कृति का निर्माण किया, इसलिए संस्कृति का जन्म मनुष्य के मध्य ही होता है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो संस्कृति को बनाने एवं बनाए रखने की क्षमता रखता है। यह संस्कृति ही है, जो मानव को प्रकृति के अन्य जीवों से अलग करती है। यह सत्य है कि मानव संस्कृति का निर्माण करता है और मनुष्य को संस्कृति निर्माण करने की शक्ति प्रकृति से ही मिलती है। मानव को ईश्वर से कुछ इस प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएँ मिली, जिसके उपयोग से संस्कृति का निर्माण करना मानव मन के लिए सम्भव हो सका।

आदिमानव से लेकर सभ्य एवं सुसंस्कृत मानवीय संवेदनायुक्त मनुष्य तक की मानवीय यात्रा का ऐतिहासिक विहंगावलोकन करने पर यह भली–भाँति दृष्टिगत होता है कि भारतीय संस्कृति का पर्यावरणीय चिन्तन अतुलनीय है। भारतीय संस्कृति में वृक्ष व वनस्पतियों को जैसा सम्मानजनक स्थान प्राप्त है, शायद ही दुनिया के किन्हीं अन्य देशों में ऐसा स्थान प्राप्त हो। धतूरा, तमाल व तम्बाकू तक इस देश की पूजा सामग्री के रूप में प्रयुक्त होने के कारण संरक्षणीय हो जाते हैं। हमारा यह भाव वनस्पति मात्र तक सीमित नहीं है वरन् प्रकृति के प्रत्येक उपादान यथा– पशु, पक्षी, नदी, सागर, पर्वत, आकाश आदि के लिए भी हैं। इन तत्वों में देवत्व भाव की स्थापना द्वारा पर्यावरण संरक्षण का सन्देश देने का प्रयास भी दृष्टिगत होता है। अनेक जीवों के प्रति देवत्व भाव दर्शाते हुए उन्हें विभिन्न आराध्यों के अवतार एवं वाहन के रूप में स्वीकार किया गया है। जैसे– शूकर, उलूक, हय, मर्कट, मत्स्य आदि। यह भाव निर्बलतम प्राणी मूषक से लेकर वन्यराज केसरी तक समान रूप से दर्शनीय हैं।

नागों की रक्षा के निमित्त नाग–पंचमी, काक से सम्बन्धित श्राद्ध–पक्ष, श्वान से सम्बन्धित भैरवाष्टमी, अश्वों एवं गौ से सम्बन्धित दशहरा पूजन व गोवर्धन पूजा, बैल से सम्बन्धित नन्दी पूजन का पर्व, शिवरात्रि इसी श्रृंखला का पर्व है। वस्तुतः ये किसी न किसी रूप में पर्यावरण संरक्षण के व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रक्रिया है।

भारतीय संस्कृति का विहंगावलोकन

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का अवलोकन करें तो पाएंगे कि विभिन्न वृक्षों एवं पौधों की महत्ता को विभिन्न त्यौहारों के माध्यम से प्रतिपादित कर सर्वसाधारण से उनके संवेर्द्धन एवं संरक्षण की अपेक्षा करते हुए उन्हें पूज्य घोषित किया है। स्वास्थ्यवर्द्धक प्राचीनतम वृक्ष आँवला, वट, केला, बेल, पीपल, तुलसी आदि के लिए आँवला एकादशी व शिवरात्रि, स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला वटसावित्री व्रत, विष्णु भगवान का निवास स्थान मानकर कदली वृक्ष पूजन, सभी धार्मिक आयोजन के आरम्भ में गणेश पूजन के निमित्त दूर्वा, सभी संस्कारों में प्रयुक्त होने वाला पीपल आदिकाल से ही पूज्जनीय वृक्ष माना जाता है। भारतीय पुरातन ग्रन्थ में वर्णित है कि ''मूलं ब्रह्मा, त्वचा विष्णु, सखा शंकरमेवच। पत्रे–पत्रेका सर्वदेवानाम्, वृक्षराज नमस्तुते'' तुलसी और पीपल के बारे में स्वीकारोक्ति है कि ये दोनों वृक्ष प्रत्येक प्रहर प्राण वायु ऑक्सीजन निर्गत करते हैं, जिस समाज में लोग व्यवहार में ऐसी संवेदनशील परम्परा विद्यमान हो वास्तव में उस काल को गम्भीर रूप से समझने के लिए उसकी संस्कृति एवं साहित्य पर दृष्टिपात करना परमावश्यक प्रतीत होता है।

यदि वास्तव में प्राचीन भारतीय संस्कृति परम्परा पर दृष्टिगत करें तो हम देखते हैं कि इसका पर्यावरण के प्रति प्रेम इतना प्रबल है कि सांस्कृतिक विकास की दिशा भी पर्यावरण के माध्यम से ही तय होती है। ऋषियों ने प्रकृति के साथ तारतम्य स्थापित कर जीवन की नवीन परिपाटी का विकास किया तथा ऐसी सभ्यता का निर्माण किया जो प्रकृति से पूरी तरह घुल–मिल गई। इसी विशेषता ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को अरण्यक संस्कृति या तपोवनी संस्कृति की अज्ञा से अलंकृत किया है।

वैदिक साहित्य में ''परितः आवरणं प्रति पर्यावरणं'' की धारणा को प्रतिपादित करते हुए पंच महाभूतों (जल, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि), मनुष्य आदि प्राणियों, वनस्पतियों आदि के समग्र रूप को पर्यावरण के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण सन्तुलन, संवर्द्धन व संरक्षण को धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आधार प्रदान कर न केवल पूज्य घोषित किया गया है, वरन् हमारे जीवन में पर्यावरण सुरक्षा को जीवनचर्या के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। भूमि, जल, वायु, आकाश, वन्य एवं जलीय जीव व वनस्पतियों आदि के संरक्षण हेतु विभिन्न ऋचाओं के द्वारा जनमानस को जागृत किया गया है तथा इसके संरक्षण के उपायों को धर्म का अभिन्न अंग बनाने का सफल प्रयास किया गया है।

वर्तमान समय में मानव ने पर्यावरण को इतना प्रदूषित किया है कि उसका परिणाम आने वाली पीढ़ियों को अनेक बीमारियों के रूप में भुगतना पड़ रहा है। हमारे पूर्वजों ने भविष्य की दुरुहता को भाँपने की शक्ति थी इसलिए हमारी भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत चिन्तन मिलता है। वृक्ष प्रकृति की सबसे मूल्यवान धरोहर है, जो पर्यावरण के तत्वों में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करता है। वायु, जल, ताप, भोजन, जीव–जन्तुओं में सन्तुलन स्थापित करने वाले वृक्ष के महात्म्य का वर्णन पौराणिक साहित्य में स्थान–स्थान पर अवलोकित होता है– ''आँवले का वृक्ष सब वृक्षों से श्रेष्ठ है क्योंकि यह भगवान विष्णु को प्रिय है। इसके स्मरण मात्र से मनुष्य गोदान का फल प्राप्त करता है। दर्शन से फल दुगुना तथा फल खाने से तिगुना पुण्य होता है। इसलिए सर्वथा प्रयत्न करके आँवले के वृक्ष का संरक्षण करना चाहिए। यदि आयुर्वेद की दृष्टि से देखें तो आँवला शारीरिक रोगों के लिए भी वरदान है। प्राचीन ग्रन्थों में वृक्षों को काटने का पूर्ण रूप से निषेध किया गया है और वृक्ष लगाने के महात्म्य का वर्णन किया गया है। पीपल, आँवला और तुलसी लगाने से सनातनीय संस्कृति में पुण्यफल की प्राप्ति होती है। पुराणों में वृक्ष लगाने की विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है। एक भी वृक्ष की स्थापना करने वाले मनुष्य को श्रेष्ठ और स्वर्ग का भागी बताया गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार पंचमहाभूतों से शरीर का निर्माण माना गया है, ये ही महाभूत पर्यावरण के कारक हैं। इसी आशय को लेकर गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है।

''छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम शरीरा।।''

मानवीय व्यवहार के फलस्वरूप वर्तमान समय में वायु, नदी तथा जल में अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। समुद्र आये दिन अपने तटों का अतिक्रमण कर रहा है, जिससे हजारों लोग मृत्यु का शिकार हो रहे हैं। साथ ही यह अनेक पर्यावरणीय परिवर्तनों का कारण भी बन रहा है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय चिन्तन के जो तत्व अवलोकित होते हैं, उनकी मात्रा अल्प होने पर भी उनमें वैचारिक स्तर पर पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक पहलुओं पर विवाद किया गया है। मानव प्रकृति पर अधिकार स्थापित करने की इच्छा मन में पालकर उसके साथ संघर्ष की स्थिति में आ खड़ा हुआ है। इस प्रकार के खेल में प्रकृति कभी पराजित नहीं हुई है, न होगी। प्रकृति अपने उत्थान और विकास में भी कभी रुकावट नहीं चाहती, फिर भी मनुष्य बिना डरे हुए उस ओर अग्रसर है। भौतिकतावादी दृष्टिकोण और विलासी जीवन को यथार्थ और आदर्श मानने वाले पर्यावरण की वास्तविकता को भूल गए हैं।

औद्योगीकरण ने पर्यावरण को सबसे अधिक प्रदूषित किया है। फैक्ट्रियों से निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थ और धुँए के कारण वायु, भूमि और जल निरन्तर प्रदूषित होते जा रहे हैं। औद्योगिक स्थानों पर लगी अनेक इकाईयों का धुँआ एक साथ चिमनियों द्वारा जब छोड़ा जाता है तब सूर्य का प्रकाश मलीन होकर धरती पर आता है। वर्तमान समय में सम्प्रभु राष्ट्रों के लिए परमाणु हथियारों की रचना सबसे गौरवशाली माना जा रहा है। इनके निरीक्षण–परीक्षण के दौरान जो विकिरण होता है वह पर्यावरण के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण आकाश और धरती अतिशय प्रदूषण से भर गई है। वायुमण्डल जहरीले धुँए से भर गया, जिसके कारण आकाश पक्षियों के उड़ने लायक नहीं रह गया है। जिस क्रूरता से मानव द्वारा प्रकृति को लूटा जा रहा है, उसे किसी भी दृष्टि से विकास की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता है। मनुष्य सम्पूर्ण प्रकृति को विज्ञान की शक्ति से अपने अधीन करने पर उतारू है। इसी को वह अपनी विजय के रूप में देखता है। जल्दी ही इस प्रकृति से मनुष्य ने मुक्ति नहीं पाई तो निश्चित ही इसका परिणाम प्रतिकूल व घातक सिद्ध होगा।

आज सम्पूर्ण विश्व 'कोरोना' जैसी महामारी से जूझ रहा है, हमें इस वैश्विक संकट में एक बार फिर से भारतीय संस्कृति के अनुरूप अपनी जीवन शैली का निर्माण करना होगा तथा प्रकृति और पर्यावरण के प्रति संवेदना जागृत करनी है तथा उनमें पर्यावरण नैतिकता व उच्च आदर्शों की स्थापना करना है क्योंकि मानव जाति का अस्तित्व पर्यावरण के सन्तुलित अस्तित्व पर निर्भर है। पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके ही विकास के समुचित मानदण्ड गढ़े जा सकते हैं तथा मानवता के आयाम स्थापित किए जा सकते हैं।

उपसंहार

अतः भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की विवेचना एवं विहंगावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति के अंगों के प्रति सहज स्नेहयुक्त मातृ–भाव, पितृ–भाव, सख्य तथा देव भाव का भाव जगह–जगह पर दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिन्तन का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह अविस्मरणीय है। अस्तु कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के प्राचीन ऋषियों एवं मनीषियों को पर्यावरण की प्रतिकूलता के कारण होने वाली विपरीत परिस्थितियों का जैसा यथार्थ अनुभव था, वह अन्य कहीं उपलब्ध नहीं होता। प्रकृति के संरक्षण एवंसंवर्द्धन हेतु एक विशिष्ट जीवन शैली का निर्माण हजारों वर्षों तक दीर्घ परम्परा में विकसित हुआ, लेकिन कुछ समय पूर्व पाश्चात्य जगत की चकाचौंध में भ्रमित मानव की बुद्धिहीनता के कारण इस परम्पराओं का अवमूल्यन जरुर हुआ है, लेकिन आज के पर्यावरण चिन्तन के लिए उसकी उपयोगिता सार्वभौमिक है। भारतीय संस्कृति हमेशा महान आदर्शों का स्त्रोत रही है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भव्य भावना के कारण यह संस्कृति सभी के प्रति पूर्ण सम्मान और सभी को आत्मस् मानकर सबके प्रति कल्याण की भावना रखती है।

संदर्भ सूची

1. पर्यावरण विज्ञान, के.एल. तिवारी, एस.के. जाधव
2. रामचरित मानस, गो. तुलसीदास जी